Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

(अभ्यास प्रश्न व उनके मॉडल उत्तर)

प्रश्नपत्र-1

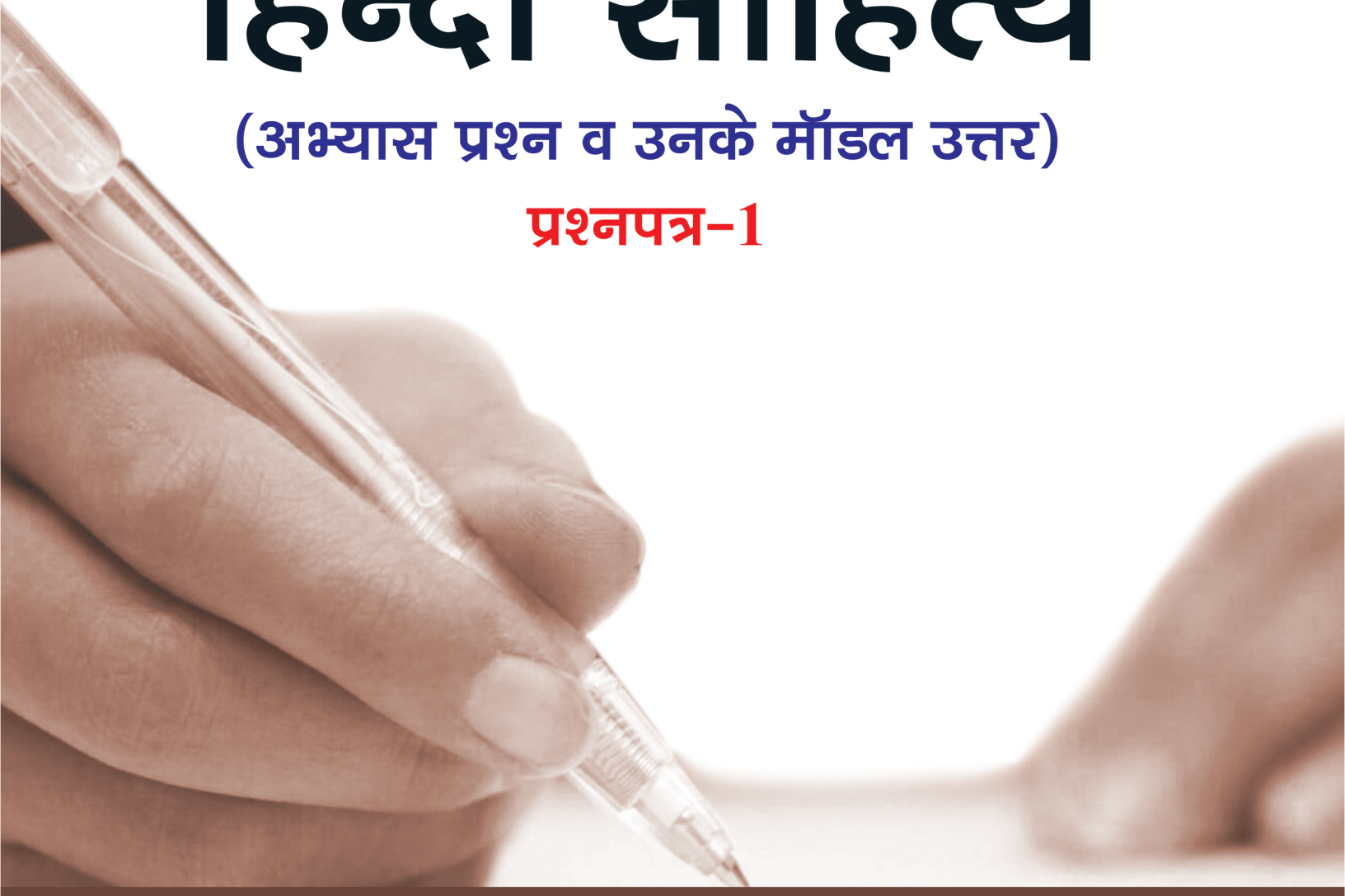

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHL09

दृष्टि The Vision

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

(अभ्यास प्रश्न व उनके मॉडल उत्तर)

प्रश्नपत्र–1

दृष्टि The Vision

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

खण्ड-क (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

1. अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप 5-10
2. मध्यकाल में ब्रज और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास 10-12
3. सिद्ध एवं नाथ साहित्य, खुसरो, संत साहित्य, रहीम आदि कवियों और दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप 12-15
4. उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास 15-16
5. हिन्दी भाषा का मानकीकरण और नागरी लिपि : मानकीकरण, सुधार के प्रयास, विशेषताएँ 16-23
6. स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास 24-29
7. भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास 29-32
8. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास 32-37
9. हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ और उनका परस्पर संबंध 37-46
10. मानक हिन्दी का स्वरूप और व्याकरणिक संरचना 46-58

खण्ड-ख (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

1. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा 58-59
2. आदिकाल 60-67
3. भक्तिकाल 67-78

4. रीतिकाल 78-83

5. आधुनिक काल 84-105

6. आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास 105-109

7. हिन्दी कहानी 109-118

8. हिन्दी उपन्यास 118-126

9. हिन्दी नाटक 126-136

10. निबंध, आलोचना एवं अन्य गद्य विधाएँ 136-144

खण्ड-क (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप

प्रश्नः 'हिन्दी साहित्य को अपभ्रंश की देन' विषय पर लघु निबंध लिखिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः अपभ्रंश के साहित्य को हिन्दी साहित्य मानने के विषय पर विद्वानों में मतभेद है परंतु परवर्ती हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश का महत्त्वपूर्ण योगदान लगभग सर्वस्वीकृत है। साहित्य में यह योगदान कथ्य के स्तर पर तथा शिल्प के स्तर पर देखा जा सकता है।

कथ्य के स्तर पर साहित्य का पहली बार लोकजीवन से संपर्क स्थापित हुई। परवर्ती साहित्य में लोकजीवन से यह जुड़ाव बढ़ता ही गया। वीर गाथाओं की रचना भी सर्वप्रथम अपभ्रंश साहित्य में ही प्रारंभ हुआ। इस प्रवृत्ति का विकास आदिकाल के चारण कवियों तथा रीतिकालीन वीर रस के काव्य में देखा जा सकता है। इसी समय चरित काव्यों की रचना की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। स्वयंभू द्वारा रचित पउम् चरिउम् इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस में इस परंपरा का चरम उत्कर्ष दिखता है। अपभ्रंश की धर्म संबधी रचनाओं में भक्ति के प्रारंभिक सूत्र दिखते हैं। आगे चलकर भक्तिकाल में यह प्रवृत्ति आन्दोलन में परिवर्तित हो गई। अपभ्रंश में की गई सिद्धों व नाथों की रचनाओं में सामाजिक असमानताओं तथा शास्त्रवाद के विरुद्ध जो आक्रमकता दिखती है, वह संतकाव्य, विशेष रूप से कबीर की वाणी में आकर और पुष्पित पल्लवित हुई।

शिल्प के स्तर पर भी अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी साहित्य की कई विशेषताओं के प्रारंभिक चिह्न देखे जा सकते हैं। संस्कृत में मूल रूप से वार्णिक छंदों की अधिकता है। अपभ्रंश में पहली बार मात्रिक छंदों की परंपरा प्रारंभ हुई। इस कारण तुकान्तता भी प्रारंभ हुई। तबसे आज तक हिन्दी में मुख्य रूप से मात्रिक छंदों का ही प्रयोग हो रहा है। हिंदी के दो सर्वाधिक प्रचलित छन्द दोहा तथा चौपाई मूलतः अपभ्रंश से ही हिंदी को मिले हैं। अपभ्रंश काल में प्रसिद्ध काव्यरूप पद, रास, फाग, चांचरी का प्रभाव भी हिंदी साहित्य पर देखा जा सकता है। कबीर के साहित्य में चांचरी तथा सूर व मीरा के काव्य में पदों का प्रयोग है। इसी प्रकार तुलसीदास की रचना 'रामलला नहछू' पर 'फाग' काव्यरूप का प्रभाव दिखता है। हिंदी साहित्य की अधिकांश काव्य-रूढ़ियों का विकास भी अपभ्रंश में ही हुआ। प्रबंध काव्य की शुरूआत में मंगलाचरण, दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा, मुक्तक कव्य में कवियों द्वारा अपना नाम प्रयोग करने की परंपरा तथा नख-शिख वर्णन जैसी काव्य रूढ़ियाँ अपभ्रंश साहित्य में ही व्यापक रूप से प्रयुक्त होने लगी थीं। तुलसी व जायसी द्वारा प्रयुक्त दोहा चौपाई की कड़वकबद्ध शैली भी इसी समय विकसित हुई। समग्रतः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य जिस सुदृढ़ आधार पर खड़ा है उसका निर्माण अपभ्रंश से ही हुआ है।

प्रश्नः भाषा के धरातल पर हिन्दी को अपभ्रंश का अवदान बताइए। **(225 शब्द)**

उत्तरः संस्कृत से हिन्दी के विकास में अपभ्रंश एक महत्त्वपूर्ण चरण है। संस्कृत मूल रूप से विभक्तियों पर आधारित संयोगात्मक भाषा है जबकि हिन्दी परसर्गों पर आधारित वियोगात्मक भाषा है। वियोगात्मकता की यह प्रवृत्ति हिन्दी को मूलतः अपभ्रंश से ही मिली है। इसके अतिरिक्त ध्वनि संरचना, व्याकरणिक संरचना तथा शब्द भण्डार के स्तर पर भी अपभ्रंश का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

1. ध्वनि संरचनाः हिन्दी में संस्कृत की जटिल ध्वनियाँ नहीं पाई जातीं। इनका सरलीकरण अपभ्रंश में ही हो गया था।
   (i) संस्कृत की दीर्घ ऋ (ॠ), ह्रस्व लृ और दीर्घ लृ जैसी ध्वनियाँ अपभ्रंश में लुप्त हो गईं, ये हिन्दी में भी नहीं हैं।
   (ii) 'ऋ' का विकास अ, इ, उ, ए तथा रि के रूप में हुआ। यह प्रवृत्ति हिन्दी में भी है।
   मातृ > मात, कृष्ण > किशन
   (iii) ट वर्ग में ड़ और ढ़ ध्वनियों का विकास। ये ध्वनियाँ अपभ्रंश की देन हैं। जैसे- लड़का, भेड़िया, बढ़ई आदि।
   (iv) नासिक्य व्यंजनों (ङ., ञ, ण, न, म) के स्थान पर अनुस्वार के उपयोग की प्रवृत्ति का विकास
   गङ्गा > गंगा, नीलकण्ठ > नीलकंठ

प्रातिपदिक के अन्त में स्वर चाहे कोई भी हो, उसका रूपान्तरण **'अकारान्त'** शब्दों की तरह होने लगा। इसके अतिरिक्त विभक्ति रूप जो संस्कृत में आठ थे, अपभ्रंश में तीन रह गये।

(इ) अपभ्रंश में ही पहली बार **परसर्गों का स्वतन्त्र विकास** शुरू हुआ। जैसे- कर्म कारक के लिए 'हिं', सम्प्रदान के लिए 'तेहि', और संबंध के लिए 'का' और 'कर'।

(ख) **वचन व्यवस्था:** संस्कृत के तीन वचनों के स्थान पर अपभ्रंश में दो वचन मिलते हैं। द्विवचन के सारे शब्द बहुवचन में शामिल हो गए।

(ग) **लिंग व्यवस्था:** संस्कृत के पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग की जगह अपभ्रंश में पहले दो लिंग रह गए।

(घ) विशेषण: संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार विशेषणों का परिवर्तित होना अपभ्रंश में भी संस्कृत की तरह स्वीकार किया गया है। इस काल में विशेष प्रवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों के विकास की है।

(ङ) **काल संरचना:** काल रचना के संबंध में अपभ्रंश में वर्तमान काल और भविष्य काल आमतौर पर संस्कृत की परम्परा में चलता है, जबकि भूतकाल हिन्दी की तरह कृदंतों के आधार पर चलता है।

(च) **सर्वनाम व्यवस्था:** सर्वनामों के रूपों में अपभ्रंश काल में जटिलता बनी हुयी है किन्तु इनकी संख्या में काफी कमी दिखती है। सर्वनाम में कुछ विकास ऐसे हुए जो सीधे-सीधे वर्तमान हिन्दी तथा हिन्दी की कुछ बोलियों से मिलते-जुलते हैं जैसे- 'तुम्हें' सर्वनाम का विकास।

(छ) **क्रिया संरचना:** क्रिया में इस काल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। क्रियाएँ कई आधारों पर विकसित होने लगी थीं। कुछ नये धातु रूप विकसित हुए जैसे- उट्ठ तथा बोल्ल।

मध्यकाल में ब्रज और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

प्रश्न: मध्यकाल में काव्यभाषा के रूप में अवधी के विकास पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तर: साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के तीव्र विकास का संबंध एक सुयोग से है। भारत की विभिन्न लोकभाषाओं में संस्कृत परंपरा से ही विकसित प्रेमकथाओं को रचने की प्रवृत्ति काफी अधिक व्याप्त थी। ऐसी प्रेमकथाओं में उर्वशी-पुरुरवा आख्यान, उषा-अनिरुद्ध कथा, मालती-माधव कथा आदि काफी प्रचलित थीं। चौदहवीं शती में सुयोग यह हुआ कि इन प्रेमाख्यानों के लिए अवधी भाषा और दोहा-चौपाई शैली रूढ़ सी हो गई। यह सुयोग होने का मूल कारण यह था कि पूर्वी उत्तर भारत में रहने वाले सूफी-प्रेमाश्रयी संतों ने अपने रहस्यवादी सिद्धांतों की अभिव्यक्ति भारत में पूर्णत: प्रचलित प्रेमाख्यानों के माध्यम से करनी आरंभ की। इस सुयोग ने अवधी को हिन्दी देश की सभी लोकभाषाओं में शिरोमणि बना दिया।

पहली रचना, जो संपूर्णत: अवधी में है और जिसने अवधी को एक झटके में लोकभाषा के पद से उठाकर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, **मुल्ला दाउद** की **'चन्दायन'** या **'लोरिकहा'** है।

इसी परंपरा में अगली रचना **कुतुबन** की **'मृगावती'** है जिसकी रचना 1503 ई. में हुई। किंतु सूफी प्रेमाख्यानों की इस समूची परंपरा को सबसे अधिक समृद्धि प्रदान करने वाले कवि **'मलिक मुहम्मद जायसी'** हैं जिन्होंने ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए कई ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाओं में **'पदमावत'** सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जिसकी रचना 1527 ई. से 1540 ई. के बीच हुई। इनकी भाषा भी ठेठ अवधी है जिसमें संस्कृत की तत्सम पदावली का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है।

जायसी के रचनाकर्म में भाषा अपने ठेठपन, देसीपन को खोए बिना, मिठास और लोक संस्कृति को धारण करते हुए कथ्य को व्यक्त करती हैं। इसके अतिरिक्त, जायसी की काव्यभाषा की बिंब योजना तथा अप्रस्तुत योजना अद्भुत हैं।

पदमावत के उपरांत भी सूफियों की प्रेमाख्यान परंपरा लंबे समय तक चलती रही। इस परंपरा में **उसमान** की **चित्रावली** (1613 ई.), **शेख नबी** की **'ज्ञानदीप'** (1619 ई.), कासिम शाह की **'हंस जवाहिर'** (1736 ई.), **नूर मुहम्मद** की **'इंद्रावती'** (1744) और **'अनुराग बाँसरी'** (1764) आदि प्रमुख हैं।

इस काल की ब्रजभाषा का दूसरा रूप घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवियों के काव्य में दिखता है। इनके यहाँ प्रायः सहज शिल्प है। इनकी भाषा सुनकर व्यक्ति चमत्कृत नहीं होता बल्कि संवेदना के गहरे स्तर पर पहुँचता है। इनके यहाँ अलंकार चमत्कृत नहीं करते बल्कि गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। जैसे- 'उजरिन बसी है हमारी अँखियान देखो'।

इस काल में ब्रजभाषा ने यद्यपि चरम विकास प्राप्त किया किंतु यह अपनी कोमलकांत पदावली के साथ केवल भक्ति, वात्सल्य तथा शृंगार तक सीमित हो गई। यही कारण है कि लोकरूचि बदलने के साथ ही खड़ी बोली ने इसे अपदस्थ कर दिया।

प्रश्नः 'जायसी अवधी के अरघान हैं'- इस कथन के परिप्रेक्ष्य में जायसी द्वारा प्रयुक्त अवधी की विशिष्टताओं का उद्घाटन कीजिए। (150 शब्द)

उत्तरः जायसी की अवधी को, उसमें उपस्थित अवधी की वास्तविक रस-गंध को लक्षित करते हुए, अवधी का अरघान कहा गया है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के 'मलिक मुहम्मद जायसी' ने काव्य में ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए कई ग्रंथों की रचना की जिनमें 'पद्मावत' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जायसी का प्रयास संपूर्ण रचनाकर्म में यही रहा है कि भाषा अपने ठेठपन, देसीपन को खोए बिना, मिठास और लोक संस्कृति को धारण करते हुए कथ्य को व्यक्त करे। लोक जीवन की स्वाभाविकता उनके शब्द चयन में स्पष्टतः दिखाई देती है। उदाहरण के लिए जायसी ने एक जगह 'दवंगरा' शब्द का प्रयोग किया है जो अवध प्रदेश में मानसून की प्रथम वर्षा के लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द पढ़ते ही अवध की लोक संस्कृति का चित्र आंखों के समक्ष सजीव हो उठता है। अवधी के पुराने शब्दों दिन अर (दिर भर), पुहुमी (पृथ्वी), भूवाल (भूपाल), विवहर (विषधर) आदि भी उनके काव्य में खुलकर प्रयुक्त हुए हैं। जायसी की अवधी में लोकजीवन के मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत सधा हुआ प्रयोग है, जैसे 'हिय फटा' तथा 'सूधी अंगुरी न निकसै घीऊ'।

पद्मावत में प्रयुक्त अवधी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मिठास है। यह माधुर्य अवधी का माधुर्य है संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर आश्रित नहीं है। रचनाकार ने भाषा का ऐसा प्रयोग किया है कि भाषा सीधे संवेदना से जुड़ने में समर्थ हो। अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने तात्कालीन ठेठ अवधी भाषा की सुरक्षा के महत् दायित्व का निर्वाह किया।

सिद्ध एवं नाथ साहित्य, खुसरो, संत साहित्य, रहीम आदि कवियों और दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप

प्रश्नः दक्खिनी हिन्दी के विकास में आदिलशाही वंश के शासकों का योगदान बताइये। (300 शब्द)

उत्तरः बीजापुर के आदिलशाही वंश में नौ सुल्तान हुए थे। इस वंश के अधिकांश सुल्तान सुसंस्कृत, विद्याव्यसनी और कला प्रेमी थे। इस वंश के चौथे शासक इब्राहिम आदिलशाह (1534-1550 ई.) ने शिया धर्म को छोड़कर सुन्नी धर्म ग्रहण कर लिया, जिसका परोक्ष प्रभाव दक्खिनी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के रूप में हुआ। इससे ईरानियों का प्रभाव कम हो गया और देशी भाषा और संस्कृत को विकास का अवसर मिला। 'दक्खिनी' को राज्य की सरकारी भाषा बना दिया गया। इससे इस भाषा की जड़ें इतनी सुदृढ़ हो गईं कि इनके उत्तराधिकारी अली आदिल शाह के भरसक प्रयत्नों के बावजूद भी फारसी का चलन न हो सका। आदिलशाह भी विद्वानों का आदर करता था और उसके शासनकाल में भी दक्खिनी हिन्दी के साहित्य में निरंतर अभिवृद्धि होती रही। शाहबुरहानुद्दीन 'जानम' जैसे उच्चकोटि के कवि इसी काल की देन हैं।

इसके बाद इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (1586-1627) के शासनकाल में साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इब्राहिम आदिलशाह स्वयं भी एक उच्च कोटि का कवि था और कवियों तथा संगीतज्ञों का आश्रयदाता भी था। इस वंश का एक अन्य सुल्तान अली आदिल शाह भी 'शाही' उपनाम से दक्खिनी हिन्दी में काव्य रचना किया करता था। उसके शासन काल में भी दक्खिनी के साहित्य को विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। इस युग में दक्खिनी हिन्दी की आदिलशाही साहित्य धारा में शाह मीराजी शमशुलइश्शाक, बुरहानुद्दीन 'जानम' और अमीनुद्दीन आला अधिक प्रसिद्ध हैं।

इस युग में दक्खिनी हिन्दी में तद्भव शब्दों का चलन बढ़ा। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से 'जानम' के काव्य में दिखती है। उन्होंने अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी उनके जन साधारण में उच्चारित (तद्भव) प्रयोग पर ही बल दिया। इस

नाथ साहित्य के कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनमें खड़ी बोली की कुछ प्रवृत्तियाँ तो दिखती हैं किन्तु यह भी झलक जाता है कि खड़ी बोली का प्रभाव सीमित मात्रा में ही है। उदाहरण के लिए चर्पटीनाथ का यह पद-

"जाणि के अजाणि होय बात तू लें पछाणि। / चेले हो दूआ लाभ होइगा गुरु होइओ आणि।।"

(तू जान के अनजान न बन, पहचान ले कि चेला बनने में लाभ ही लाभ है, गुरु होने में हानि है)।

उपरोक्त उदाहरण में न के स्थान पर ण का प्रयोग वह मूल प्रवृत्ति है जो खड़ी बोली में विशेष रूप से विद्यमान है। नाथ साहित्य में कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जो आश्चर्यजनक रूप से वर्तमानकालीन खड़ी बोली के निकट दिखायी पड़ते हैं। गोरखनाथ लिखते हैं-

"नौ लख पातरि आगे नाचें पीछे सहज अखाड़ा / ऐसो मन लै जोगी खेलै तब अंतरि बसै भंडारा।।"

उपरोक्त उदाहरण में आकारान्तता, एकारान्तता आदि की लगभग सारी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से खड़ी बोली के समान परिलक्षित होती हैं। संख्यावाची विशेषण भी खड़ी बोली के समान हैं, यद्यपि लै, खेलै और बसै जैसे प्रयोग खड़ी बोली से कुछ अलग ब्रजभाषा की प्रकृति के निकट हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाथ साहित्य में खड़ी बोली के प्रारंभिक रूप पूरी स्पष्टता के साथ विद्यमान हैं।

प्रश्नः रहीम के साहित्य में खड़ी बोली हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप पर प्रकाश डालिये। (225 शब्द)

उत्तरः अब्दुल रहीम खानखाना अकबर के प्रसिद्ध दरबारी सहयोगी तथा सेनापति थे किंतु उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार उनका साहित्य है। रहीम हिन्दी भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवियों में प्रमुख माने गये हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में मूल रूप से अवधी ('बरवै नायिका भेद' आदि रचनाओं में) तथा ब्रजभाषा ('दोहावली' आदि रचनाओं में) का प्रयोग किया है किन्तु इनकी एक अन्य रचना 'मदनाष्टक' में खड़ी बोली का स्पष्ट प्रयोग दिखाई देता है। यूँ भी, इनके पूरे साहित्य में खड़ी बोली का आभास कराने वाली कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ लगातार दिखाई पड़ती हैं।

साधारणतः, रहीम की भाषा में खड़ी बोली प्रायः शब्दों या पदों की प्रयुक्ति के स्तर पर ही है, व्याकरणिक ढाँचे के स्तर पर नहीं। उनके शब्द आधुनिक खड़ी बोली से इतने ज्यादा मिलते-जुलते हैं कि उन्हें समझने में एकदम कठिनाई नहीं होती। इसके बावजूद यह भाषा मूलरूप से ब्रज या अवधी से अधिक प्रभावित होती है। निम्नलिखित उदाहरण में ऐसी ही खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा को देखा जा सकता है -

"रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून। / पानी बिनु न ऊबरे मोती मानुस चून।।"

ऐसा ही एक और उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें तीन शब्दों (नरन, सों तथा दुहूँ) के अतिरिक्त शेष संपूर्ण शब्दावली खड़ी बोली के ही समान प्रतीत होती है-

"रहिमन ओछे नरन सों, बैर भली न प्रीत। / काटे चाटे श्वान के दुहूँ भांति विपरीत।"

खड़ी बोली की परंपरा की दृष्टि से रहीम की कविता 'मदनाष्टक' अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गई है क्योंकि उसकी भाषा आज की खड़ी बोली जैसी ही है। व्याकरणिक संरचना तथा शब्दावली दोनों स्तरों पर यह उदाहरण खड़ी बोली का स्पष्ट आभास करा रहा है-

"पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ, / असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ।"

स्पष्ट है कि रहीम ने खड़ी बोली में पर्याप्त प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है। तब भी, औसत रूप से उनकी भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा एवं अवधी का है किन्तु शाब्दिक तथा व्यावहारिक स्तर पर यह भाषा खड़ी बोली के अत्यन्त निकट है।

उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास

प्रश्नः उन्नीसवीं सदी में खड़ी बोली हिंदी के विकास में सामाजिक सुधार आन्दोलनों की भूमिका पर प्रकाश डालिए। (225 शब्द)

उत्तरः भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों के प्रचार-प्रसार की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह हुई थी कि कई भारतीय बुद्धिजीवी अपने-अपने धर्म तथा समाज की सुरक्षा के लिए आगे आये थे। इनके लिए आवश्यक था कि ये

ईसाई मिशनरियों के विचारों का खण्डन करें तथा आम आदमी के मन में अपनी संस्कृति, अपने समाज तथा अपने धर्म के प्रति गहरी निष्ठा स्थापित करें। ऐसे नेताओं में महर्षि दयानन्द सरस्वती (आर्यसमाज), राजा राममोहन राय (ब्रह्मसमाज) तथा श्रद्धाराम फिल्लौरी (हिन्दू धर्म सभा) का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने अपनी प्रचार सामग्री को सरल और सुबोध खड़ी बोली में प्रस्तुत किया। इससे भी खड़ी बोली का तीव्र विकास हुआ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने खड़ी बोली में सत्यार्थ प्रकाश की रचना की तथा आर्यसमाज के मूल सिद्धान्तों में हिन्दी के प्रति निष्ठा को स्थान दिया। उनकी तर्क-वितर्क शैली के प्रभाव से खड़ी बोली हिन्दी की पहचान एक ऐसी भाषा की बनी जिसमें तर्कपूर्ण विचार व्यक्त किए जा सकते हैं।

राजा राममोहन राय ने 1815 ई. में 'वेदांतसूत्र' का हिंदी में अनुवाद किया। 1829 ई. में उन्होंने 'बंगदूत' नामक अखबार निकाला तथा पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी और देवनागरी के पक्ष में आन्दोलन चलाया।

श्रद्धाराम फिल्लौरी ने विश्व प्रसिद्ध आरती 'ओउम् जय जगदीश हरे' की रचना की। उनके गद्य 'सत्यामृतप्रवाह' में बहुत साफ और प्रौढ़ खड़ी बोली देखने को मिलती है।

इनके अतिरिक्त "थियोसोफिकल सोसायटी" ने देश में संपर्क भाषा के तौर पर हिन्दी को बढ़ावा दिया। इस काम में एनी बेसेंट की भूमिका काफी सराहनीय रही।

प्रश्नः खड़ी बोली हिंदी के विकास में ईसाई मिशनरियों के योगदान पर प्रकाश डालिए। (150 शब्द)

उत्तरः उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली के विकास में ईसाई मिशनरियों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही यूरोप से मिशनरियों का आगमन आरंभ हुआ और उन्होंने ईसाई मत के प्रचार के लिए भारत की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को अपने अत्यन्त अनुकूल पाया। आरंभ में उन्होंने यह महसूस किया था कि फारसी प्रधान हिन्दी भारत में सर्वाधिक प्रचलित है। जल्दी ही यह भ्रम दूर हो गया और 1811 ई. में पोप चेम्बरलीन तथा पिकॉप के आगमन के बाद मिशनरियों के समक्ष यह निश्चित हो गया कि भारत में सर्वाधिक प्रचलित भाषा हिन्दवी है।

ईसाई प्रचारकों ने बाइबिल के कुछ विशेष अंशों का सरल हिन्दी अनुवाद कराकर छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में उनका निःशुल्क वितरण कराया। इससे देवनागरी लिपि तथा खड़ी बोली का व्यापक प्रचार-प्रसार होने लगा। इस प्रक्रिया में हेनरी टॉमस कोल ब्रुक ने हिन्दी में बाइबिल का हिन्दी रूपान्तरण 1812 से 1818 ई. के मध्य किया। इसी प्रकार हेनरी मार्टिन ने न्यू टेस्टामेंट को 1817 ई. में देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया।

हालाँकि ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य खड़ी बोली का विकास न होकर अपने धर्म का प्रचार-प्रसार था, लेकिन प्रकारान्तर से उन्होंने खड़ी बोली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, इसमें कोई संदेह नहीं।

हिन्दी भाषा का मानकीकरण और नागरी लिपि : मानकीकरण, सुधार के प्रयास, विशेषताएँ

प्रश्नः देवनागरी लिपि के मानकीकरण में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के योगदान पर प्रकाश डालिए।
(150 शब्द)

उत्तरः देवनागरी लिपि के मानकीकरण में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वस्तुतः इस दिशा में किए गए संस्थागत प्रयासों में सबसे पहला उल्लेखनीय प्रयास 1935 के "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" की ओर से ही हुआ। सम्मेलन ने इस वर्ष महात्मा गांधी के सभापतित्त्व में "नागरी लिपि सुधार समिति" बनाई जिसके संयोजक काका कालेलकर थे। समिति की प्रमुख सिफारिशें ये थीं-

1. सावरकर बंधुओं द्वारा सुझायी गई बारहखड़ी को स्वीकार किया जाए।
2. ध और भ में गुजराती घुंडी लगाई जाए (ध, भ)।
3. व्यंजन संयोग में ऊपर नीचे की स्थिति को समाप्त कर दिया जाए। द्द, द्य आदि के स्थान पर द्‌द, द्‌य का प्रयोग हो।
4. शिरोरेखा लेखन में न रहे, पर मुद्रण में बनी रहे।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

प्रश्नः राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के योगदान पर प्रकाश डालिए।
(150 शब्द)

उत्तरः 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहते हैं तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर तथा सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।उनकी मान्यता थी कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी है। लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उनका कथन है- 'राष्ट्र संगठन के लिये आज ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे सर्वत्र समझा जा सके। हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती है।'

तिलक ने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिन्दी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिन्दी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। लोकमान्य तिलक आजीवन हिंन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। उन्होने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए भारतीय लोगों से बार-बार आग्रह किया।

प्रश्नः राष्ट्रभाषा व राजभाषा के अंतर पर प्रकाश डालिए। (225 शब्द)

उत्तरः राष्ट्रभाषा और राजभाषा प्रयुक्ति की दृष्टि से भाषा की दो महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। सामान्य दृष्टि से कहा जा सकता है कि राष्ट्रभाषा वह भाषा है जिसे किसी राष्ट्र के निवासी जीवन के सभी संदर्भों में स्वाभाविक रूप से प्रयोग करते हैं जबकि राजभाषा वह भाषा है जिसका प्रयोग सरकारी कामकाज के लिए किया जाता है। इन दोनों में प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं-

(i) राष्ट्रभाषा जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त होने वाली साधारण भाषा है। इसके विपरीत राजभाषा का संदर्भ सीमित है। वह सरकारी कर्मचारियों व अधिकारियों द्वारा सिर्फ कार्यालयी कामकाज में प्रयुक्त होती है।

(ii) राष्ट्रभाषा का शब्द भंडार अनौपचारिक, गैर पारिभाषिक तथा अनिश्चित होता है। इसके विपरीत, राजभाषा का शब्द भंडार पारिभाषिक, औपचारिक तथा निश्चयात्मक होता है। निश्चित अवधारणाओं के लिए उसमें निश्चित शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(iii) राष्ट्रभाषा का प्रयोग साहित्यिक भाषा या काव्यभाषा के रूप में भी होता है जबकि राजभाषा का नहीं। राष्ट्रभाषा के प्रयोग में आत्मनिष्ठता की संभावनाएँ हमेशा बनी रहती हैं। इसके विपरीत, राजभाषा अपनी प्रकृति में वस्तुनिष्ठ होती है जिसकी शब्दावली या ध्वनि संरचना में व्यक्तिगत तत्वों की भूमिका नगण्य होती है।

(iv) किसी देश की राजभाषा कोई विदेशी भाषा हो सकती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी शासन के दौरान भारतीय शासन की भाषा अंग्रेज़ी थी। इसके विपरीत, राष्ट्रभाषा कभी भी विदेशी भाषा नहीं हो सकती, वह राष्ट्र की अपनी भाषा ही होती है।

(v) राष्ट्रभाषा में परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता है अर्थात् समय के साथ राष्ट्रभाषा धीरे-धीरे बदलती है। इसके विपरीत, राजभाषा में कोई भी परिवर्तन ऊपर से थोपा जा सकता है, जैसे कुछ शब्दों को जोड़ना, कुछ शब्दों को खारिज कर देना इत्यादि। सिर्फ इतना ही नहीं, सिर्फ एक सरकारी आदेश से राजभाषा बदली भी जा सकती है लेकिन राष्ट्रभाषा को नहीं बदला जा सकता है।

प्रश्नः स्वतंत्रता-आन्दोलन के दौर में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास में महात्मा गाँधी के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
(300 शब्द)

उत्तरः हिन्दी के साथ महात्मा गांधी का नाम उसी अमरता के साथ जुड़ा हुआ है जिस प्रकार देश की आजादी के साथ। महात्मा गांधी का अनुभव था कि पराधीनता, चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषाई क्षेत्र की, दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाए रखने वाली हैं। 1916 में काशी में नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दू विश्वविद्यालय में दिए गए अपने व्याख्यानों में गांधी जी ने हिन्दी के प्रचलन और प्रयोग पर जोर दिया।

इस प्रकार तमिलनाडु के नेताओं देश के दूसरे भागों से गए नेताओं एवं हिन्दी प्रचारकों एवं शिक्षाविदों के प्रयास से वहाँ कि जनता में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति रुचि एवं स्नेह जाग्रत हुआ तथा उन्होंने हिन्दी सीखकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार एवं विकास में योगदान दिया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में तमिलनाडु का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

प्रश्नः स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान केरल और कर्नाटक में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः केरल में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का सार्वजनिक प्रचार सन् 1922 में आरंभ हुआ। दामोदरन उण्णिजी केरल के सर्वप्रथम हिन्दी प्रचारक माने जाते हैं। उन्होंने केरल में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अधीन यह कार्य प्रारंभ किया। केरल के ट्रिच्चूर में उन्होंने सैकड़ों लोगों को हिन्दी सीखा दी। केरल के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता कुरुर नीलकंठन नंपूतिरिपाद ने भी उन्हें काफी सहयोग दिया। बाद में कई अन्य केन्द्रों में भी उण्णिजी ने हिन्दी की जड़ जमाने में सफलता पाई।

उण्णिजी के बाद हिन्दी प्रचार में उतरने वाले दूसरे महत्वपूर्ण प्रचारक के. केशवन नायर है। आरंभ में ट्रिवेंड्रम तथा बाद में कई अन्य केन्द्रों पर भी हिन्दी प्रचार का कार्य उन्होंने किया। इनके अतिरिक्त शंकरानंद, के.वी. नायर आदि का नाम भी केरल के आरंभिक हिन्दी प्रचारकों में उल्लेखनीय है।

सन् 1927 के बाद केरल में हिन्दी प्रचार-आन्दोलन में तीव्रता आई। सैकड़ों नए केन्द्र खुले। प्रचारकों और विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ी। सन् 1933 में केरल-प्रान्तीय-हिन्दी- प्रचार-सभा की स्थापना की गई। प्रचार-कार्य करने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों में ए. चन्द्रहासन, इग्नेशियस, सी. मत्ताई आदि शामिल हैं।

सन् 1923 के काकिनाड़ा कांग्रेस सम्मेलन के सिलसिले में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का अधिवेशन भी बुलाया गया था जिसमें कर्नाटक के तत्कालीन नेताओं गंगाधर राव देशपांडे, डॉ. ना.सु. हर्डीकर आदि ने भी भाग लिया था। वहाँ प्रभावित होकर उनकी भी यह इच्छा हुई कि कर्नाटक में हिन्दी का प्रचार सुसंगठित एवं व्यापक रूप में किया जाए। इस तरह कर्नाटक में हिन्दी प्रचार का आरंभ हुआ। सन् 1924 के बेलगाँव के कांग्रेस महाअधिवेशन में कर्नाटक के नेताओं ने हिन्दुस्तानी सेवादल के शिविरों में हिन्दी पढ़ाने का प्रबंध किया। मंगलूर, हुबली, बेंगलूर, मैसूर, बेलगाँव आदि हिन्दी प्रचार के प्रमुख केन्द्र बने।

सन् 1930 तक कर्नाटक के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी की जड़ जम चुकी थी। 1935 में कर्नाटक 'मैसूर रियासत हिन्दी समिति' भी बनी। कर्नाटक में राष्ट्रभाषा हिन्दी आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अन्य नेताओं में आर.आर. दिवाकर, सी.पी. रामराव कपूर, कार्नाड सदाशिव राव आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

प्रश्नः 'राजभाषा अधिनियम, 1963' पर टिप्पणी कीजिए। **(150 शब्द)**

उत्तरः संविधान के उपबंधों के अनुसार 1965 में हिंदी को भारत की एकमात्र राजभाषा बनना था, पर इससे ठीक पहले अहिंदी क्षेत्रों, विशेषतः पश्चिमी बंगाल तथा तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलन प्रारंभ हो गए। ऐसी स्थिति में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अहिंदी भाषी क्षेत्रों को आश्वासन दिया कि हिंदी को एकमात्र राजभाषा स्वीकार करने से पहले अहिंदी क्षेत्रों की सहमति प्राप्त की जाएगी। इसी आश्वासन की पूर्ति के लिए राजभाषा अधिनियम 1963 बनाया गया जिसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं-

1. 26, जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग यथावत् चलता रहेगा।
2. उच्च न्यायालयों के निर्णयों में हिंदी या किसी राज्यस्तरीय राजभाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।
3. संघ के संकल्पों, अधिसूचनाओं, विज्ञापनों आदि दस्तावेजों को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी करना अनिवार्य होगा।
4. जब तक अहिन्दी भाषी राज्य अंग्रेजी को समाप्त करने का संकल्प नहीं ले लेंगे, तब तक अंग्रेजी का प्रयोग चलता रहेगा।

केंद्रीय हिन्दी निदेशालय का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय चेन्नई, कलकत्ता, हैदराबाद और गुवाहाटी में है। अपनी स्थापना के समय से केंद्रीय हिन्दी निदेशालय हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए कई योजनाएँ चला रहा है। इसके द्वारा कार्यान्वित मुख्य योजनाएँ निम्नांकित हैं।

(i) हिन्दी में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा और एडवांस डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का संचालन
(ii) सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी में प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ पाठ्यक्रमों का संचालन
(iii) हिन्दी में बेसिक पाठ्यक्रम का संचालन
(iv) एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों का प्रकाशन
(v) हिन्दी में पत्राचार पाठ्यक्रम का संचालन
(vi) हिंदीतर भाषी हिन्दी लेखकों के लिए विभिन्न पुरस्कार
(vii) हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के नए हिन्दी लेखकों के लिए कार्यशाला
(viii) हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के हिन्दी विद्यार्थियों के लिए अध्ययन यात्रा
(ix) पुस्तकों के प्रकाशन एवं खरीद के लिए सहायता की योजना सहित हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए स्वयंसेवी संगठनों को अनुदान
(x) निःशुल्क वितरण हेतु हिन्दी पुस्तकों का क्रय
(xi) श्रव्य कैसेटों के माध्यम से हिन्दी शिक्षण और हिन्दी का प्रचार-प्रसार
(xii) हिन्दी पत्रिकाओं का प्रकाशन
(xiii) देवनागरी लिपि एवं हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास

प्रश्नः हिंदी में वैज्ञानिक लेखन में जयन्त विष्णु नार्लीकर के योगदान पर प्रकाश डालिए। (150 शब्द)

उत्तरः हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को गति देने वालों लेखकों में गुणाकर मुले के बाद प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक जयन्त विष्णु नार्लीकर का नाम अति महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्माण्ड के स्थिर अवस्था सिद्धान्त के विशेषज्ञ नार्लीकर लंबे समय तक विदेश में रहने के उपरान्त 1970 में भारत लौटे तो वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य के साथ-साथ जनसामान्य में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के प्रति भी सजग हुए और इसी उद्देश्य के तहत उन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी और मराठी में अनेक पुस्तकों की रचना की।

हिन्दी में नार्लीकर ने कई पुस्तकों की रचना कर हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का प्रसार करने का काम किया। उनकी लिखी पुस्तकों में 'ब्रह्माण्ड की कुछ झलकें', 'ब्रह्माण्ड की यात्रा', 'घूमकेतु', 'तारों की जीवन-गाथा' आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार जयन्त विष्णु नार्लीकर ने हिन्दी में वैज्ञानिक-लेखन करके एक बड़े अभाव की पूर्ति की और हिन्दी भाषा के विकास में बड़ा योगदान किया।

प्रश्नः हिंदी टाइपिंग की समस्याओं पर प्रकाश डालिए। (225 शब्द)

उत्तरः कम्प्यूटर पर हिन्दी में टाइपिंग करने के लिए की-बोर्डों की बहुतायत एक बड़ी समस्या है। हिन्दी में एक-दो नहीं बल्कि पचासों अलग-अलग तरह के की-बोर्ड ले-आउट उपलब्ध हैं।

इन सभी की-बोर्ड लेआउट्स में अलग-अलग ढंग से हिन्दी टाइप की जाती है। इस प्रकार कीबोर्डों की बहुतायत के कारण हिन्दी टाइपिंग में कठिनाई आती है। विभिन्न प्रकार के फान्ट्स इन कीबोर्डों के साथ अलग-अलग ढंग से काम करते हैं, इससे हिन्दी में टाइपिंग की समस्या और भी अधिक जटिल हो जाती है। कीबोर्ड से जुड़ी एक अन्य समस्या यह भी है कि सामान्यतः सभी कीबोर्डों में केवल अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर ही छपे होते हैं।

इसके विपरीत अंग्रजी में टाइपिंग की पद्धति मानकीकृत है। चाहे आप विंडोज पर काम करें या मैकिंटोश पर या फिर लिनक्स पर, अंग्रेजी टाइपिंग का तरीका एक समान ही रहेगा। अफसोस की बात यह है कि आस्की (ASCII) तथा यूनीकोड जैसे मानकीकृत फोंट एनकोडिंग्स (व्यवस्थाओं) के सामने आने तथा इनस्क्रिप्ट जैसे विलक्षण सुविधाजनक, सरल और सक्षम

दी है कि उन्होंने हिंदी भाषा में 'सरल त्रिकोणमिति' उस समय तक प्रस्तुत कर दी थी और हिंदी भाषा में गणित विद्या की पूरी श्रेणी बनाने के काम में जुट गए थे। वस्तुतः पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने गणित, स्थिति विद्या, गति विद्या, वायुमंडल विज्ञान, प्राकृतिक भूगोल और पदार्थ विज्ञान जैसे विषयों पर पुस्तकें लिखकर हिंदी के आरंभिक वैज्ञानिक लेखन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। आगे चलकर महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी ने 'चलन कलन' तथा विशंभरनाथ शर्मा ने 'रसायन संग्रह' (1896, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता) की रचना की। ये सभी उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति में हिंदी आरंभ से समर्थ और सचेष्ट रही है।

हिंदी के वैज्ञानिक लेखन को इस बात से बड़ा बल मिला कि गुरुकुल कांगडी (1900) ने विज्ञान सहित सभी विषयों की शिक्षा के लिए हिंदी को माध्यम बनाया और तदनुरूप 17 पुस्तकों का प्रणयन भी किया। यहाँ यह जानना रोचक होगा कि भारतेंदु और द्विवेदी युगीन लेखकों और संपादकों ने हिंदी में पर्याप्त वैज्ञानिक लेखन भी किया। पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यकारों ने वैज्ञानिक विषयों पर भी अत्यंत सहज ढंग से लिखा और इस क्रम में अनेकानेक वैज्ञानिक शब्दावली और अभिव्यक्तियों का निर्माण किया।

इलाहाबाद में 1913 में स्थापित विज्ञान परिषद ने 1914 में 'विज्ञान पत्रिका' आरंभ की और वैज्ञानिक लेखन के लिए नए आयाम खोले। हिंदी भाषासमाज के लिए यह गर्व का विषय है कि 'विज्ञान पत्रिका' तब से अब तक निरंतर प्रकाशित होती आ रही है। हिंदी में वैज्ञानिक लेखन की संभावनाओं को अनंत आकाश उपलब्ध कराने की दृष्टि से डॉ. रघुवीर के कार्य को कभी नहीं भुलाया जा सकता। उन्होंने 1943-46 के दौरान लाहौर से हिंदी, तमिल, बंगला और कन्नड - इन चार लिपियों में तकनीकी शब्दकोश प्रकाशित किया।

स्वतंत्रता से लेकर अबतक हिन्दी में मौलिक और अनुदित वैज्ञानिक-लेखन के स्तर पर कई ग्रंथ लिखे गए हैं। मौलिक ग्रंथों में डॉ. निहालकरण सेठी का 'चुम्बकत्व और विद्युतत्व', डॉ. सत्यप्रकाश का 'सामान्य रसायन शास्त्र', डॉ. ब्रजमोहन का 'ठोस ज्यामिति', निर्मल बंद्रवाल का '21वं सदी की वैज्ञानिक खोजें, 'आपदा प्रबंधन', मानवेन्द्र सिन्हा का 'अंतरिक्ष के प्रयोग' आदि महत्वपूर्ण हैं।

इसमें संदेह नहीं कि आज वैज्ञानिक शब्दावली और अभिव्यक्तियों की दृष्टि से हिंदी अत्यंत समृद्ध है। इतने पर भी आज वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में लेखन बहुत ही कम और अपर्याप्त है। इसका कारण भाषा की असमर्थता नहीं बल्कि वैज्ञानिकों का इस दिशा में रुझान न होना है। इसका निराकरण तभी संभव है जब एक तो, शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को अपनाया जाय तथा दूसरे, वैज्ञानिकों को हिंदी में बोलने और लिखने के लिए प्रेरित किया जाए। यदि ऐसा किया जा सके तो निश्चय ही हिंदी के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना भारत के जनगण तक पहुँच सकती है।

हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ और उनका परस्पर संबंध

प्रश्नः 'हिन्दी भाषा का क्षेत्र' पर टिप्पणी लिखिए। **(150 शब्द)**

उत्तरः हिन्दी भाषा का मूलभूत क्षेत्र वह है जहाँ इसका प्रयोग बोलने, समझने तथा लिखने की भाषा के रूप में होता है। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहें तो यह वह क्षेत्र है जहाँ हिन्दी का प्रयोग प्रथम भाषा के रूप में होता है। इस क्षेत्र में मूलतः भारत के दस राज्य आते हैं - दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश।

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ हिन्दी सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त तो नहीं होती किंतु समझी अवश्य जाती है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह वह क्षेत्र है जहाँ हिन्दी द्वितीयक भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिये - महाराष्ट्र (मराठी), गुजरात (गुजराती), उड़ीसा (उड़िया), पश्चिमी बंगाल (बंगला), पंजाब (पंजाबी), असम (असमिया) आदि क्षेत्र मूल परिवार की दृष्टि से हिन्दी परिवार के हैं।

भारत के बाहर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हिन्दी प्राथमिक या द्वितीयक भाषा के रूप में समाज के बड़े हिस्से में व्याप्त है। इस दृष्टि से नेपाल, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद एवं टोबैगो आदि देश महत्वपूर्ण हैं।

- बुंदेली में सहायक क्रिया के संबंध में एक विशेष बात यह है कि इसमें 'ह' ध्वनि का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस वजह से निम्नलिखित परिवर्तन बुंदेली में दिखाई देते हैं:

  हूँ > औं हौ > आव हैं > आय

- भविष्यकाल में 'ह', 'ग' तथा 'नै' रूप चलते हैं, जैसे- होगे, हुहौ तथा होनै। भूतकाल में ता, ते, ती रूप प्रचलित हैं।
- हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह बुंदेली में भी स्त्रीलिंग बनाने के लिये 'इन' तथा 'नी' प्रत्यय लगते हैं, जैसे-

  लड़का > लड़किन हरिन > हरिनी

मानक हिन्दी का स्वरूप और व्याकरणिक संरचना

प्रश्न: मानक हिन्दी की वचन-संरचना पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: हिन्दी में दो ही वचन स्वीकार किए गए हैं - एकवचन तथा बहुवचन। हिन्दी की वचन संरचना किसी तार्किक चिंतन का परिणाम न होकर भाषा के व्यावहारिक लोक प्रयोगों से उभरी है। अत: इस संबंध में निश्चित नियम नहीं हैं। तब भी, कुछ व्यावहारिक नियम इस प्रकार हैं-

(क) पुल्लिंग शब्दों में वचन संरचना

(i) आकारान्त पुल्लिंग एकवचन शब्द बहुवचन में एकारान्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए-

लड़का > लड़के बेटा > बेटे

(ii) शेष सभी पुल्लिंग शब्द बहुवचन में भी अपरिवर्तित रहते हैं। केवल क्रिया व सर्वनाम के परिवर्तन से ही वचन परिवर्तन का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए-

यह उसका घर है > ये उसके घर हैं।

(ख) स्त्रीलिंग शब्दों में वचन संरचना

(i) ईकारान्त एकवचन शब्द बहुवचन में 'इयाँ' हो जाते हैं

उदाहरण - मिठाई > मिठाइयाँ नदी > नदियाँ

(ii) इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में बहुवचन में 'याँ' जुड़ जाता है-

उदाहरण - नीति > नीतियाँ रीति > रीतियाँ

(iii) आकारान्त शब्दों में बहुवचन में 'एँ' जुड़ता है-

उदाहरण - अबला > अबलाएँ कामना > कामनाएँ

(iv) अकारान्त एकवचन शब्दों में बहुवचन में 'अ' का 'एँ' हो जाता है-

उदाहरण - बहन > बहनें आँख > आँखें

ध्यातव्य है कि हिन्दी में संस्कृत की तरह वचनानुसार क्रिया परिवर्तन होता है जबकि अंग्रेज़ी में ऐसा मात्र सहायक क्रियाओं के साथ वर्तमान काल व भूतकाल में होता है। उदाहरण के लिए-

संस्कृत - स: गच्छति > ते गच्छन्ति English – He is going > They are going

हिन्दी - वह जाता है > वे जाते हैं। I was going > We were going

I shall go > We shall go

हिन्दी की वचन व्यवस्था से संबंधित कुछ अन्य विशेषताएँ-

(i) कुछ शब्द ऐसे हैं जो बहुवचन के अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे प्राण, होश, आँसू, दर्शन इत्यादि।

उदाहरण - 'शेर देखकर मेरे प्राण निकल गए।'/ 'भला हुआ, जो तुम्हारे दर्शन हुए।'

(घ) संख्यावाचक विशेषण: यह विशेषण भी लगभग परिमाणबोधक विशेषण के समान है किंतु ये तब आते हैं जब विशेष्य के रूप में कोई जातिवाचक संज्ञा हो। ये भी दो प्रकार के हैं -

(अ) निश्चित संख्यावाचक - 'बीस' राक्षस आए थे।

(आ) अनिश्चित संख्यावाचक - 'कुछ' देवता आए थे।

खण्ड-ख (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा

प्रश्न: 'मिश्रबंधु विनोद' पर टिप्पणी लिखिये। **(150 शब्द)**

उत्तर: आचार्य शुक्ल पूर्व इतिहास लेखन में अंतिम महत्वपूर्ण प्रयास मिश्रबंधुओं ने किया। मिश्र बंधु तीन भाई थे जिनके नाम थे- शुकदेव बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र तथा गणेश बिहारी मिश्र। इन्होंने चार खण्डों में अपना ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद' लिखा। इसके प्रथम तीन खण्ड 1913 ई. में छपे और चौथा खण्ड 1934 ई. में। यह अभी तक का सर्वाधिक वृहद् ग्रंथ था क्योंकि इसमें लगभग 5 हजार कवियों के जीवन व साहित्य का वर्णन था। इन्होंने तथ्यों की प्रामाणिकता का ध्यान रखा। प्राय: इस ग्रंथ में तथ्य प्रामाणिक माने जाते रहे हैं। स्वयं आचार्य शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में स्वीकार किया है कि ''कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्राय: 'मिश्रबंधु विनोद' से ही लिए हैं।''

इस ग्रंथ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें काल विभाजन व नामकरण हेतु अधिक परिपक्व प्रयास किया गया है। इन्होंने मूलत: पाँच काल बताए- आरंभिक काल, माध्यमिक काल, अलंकृत काल, परिवर्तन काल तथा वर्तमान काल। फिर पहले तीनों कालों को दो-दो उपखण्डों में विभक्त कर दिया जिससे कालों की संख्या आठ हो गई। ग्रियर्सन ने काल खण्डों का नामकरण व्यक्तिगत व राजनीतिक आधार पर निश्चित किया था किन्तु मिश्रबंधुओं ने इसके लिए या तो साहित्यिक आधार लिए या निर्विशेष। इन्होंने रचना के मूल्यांकन में तुलनात्मक पद्धति को अपनाया, हालांकि इनके यहाँ तुलना का दृष्टिकोण पारम्परिक या काव्यशास्त्रीय ही बना रहा। इस ग्रंथ का महत्व एक वृहद व प्रामाणिक तथ्य-कोश के रूप में है, न कि इतिहास-बोध से सम्पन्न ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में।

प्रश्न: 'हिन्दी साहित्येतिहास को ग्रियर्सन की देन' पर टिप्पणी लिखिए। **(150 शब्द)**

उत्तर: जार्ज ग्रियर्सन का 1988 में प्रकाशित 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ नार्दर्न हिन्दुस्तान' साहित्यिक इतिहास बोध से युक्त हिन्दी का प्रथम साहित्येतिहास ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पहली बार काल विभाजन, कालों का नामकरण, युगीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण जैसी विशेषताएँ देखने को मिलीं। ग्रियर्सन ने मात्र कविवृत्त संग्रह करने के स्थान पर कवियों के मूल्यांकन को अपने साहित्येतिहास का आधार बनाया। यह एक युगांतकारी परिवर्तन था। ग्रियर्सन ने संस्कृत, प्राकृत व फारसी मिश्रित उर्दू साहित्य को हिन्दी साहित्य का अंग न मानकर भाषिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के दायरे को सुपरिभाषित किया।

ग्रियर्सन ने ही पहली बार साहित्येतिहास में पाद टिप्पणियों का प्रयोग प्रारंभ किया जिससे लेखन की प्रामाणिकता बढ़ी। ग्रियर्सन ने ही सबसे पहले भक्तिकाल को स्वर्णयुग की संज्ञा दी जो आज भी मान्य है। ग्रियर्सन के साहित्येतिहास में काल विभाजन की यादृच्छिकता, भक्तिकाल के बीज ईसाइयत में खोजने जैसी कुछ गंभीर कमियाँ भी हैं, पर कुल मिलाकर हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में ग्रियर्सन की देन मील का पत्थर है।

प्रश्न: 'भक्तमाल' पर टिप्पणी लिखिए। **(150 शब्द)**

उत्तर: नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल' हिन्दी साहित्येतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत ग्रंथ है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इस ग्रंथ के उपलब्ध संस्करण में 200 छंदों में लगभग 200 भक्तों के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों का उल्लेख है। इन भक्तों में रामानुज, श्री विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, अंगददेव, शंकराचार्य, नंददास, मीरा, रैदास, कबीर, पीपा, धन्ना आदि प्रमुख हैं। इस ग्रंथ में भक्तों के साथ-साथ सिद्धों, नाथों की वाणी का भी संकलन किया गया है।

आदिकाल

प्रश्नः 'प्रगतिशील चेतना' की दृष्टि से 'नाथ-साहित्य' पर विचार करते हुए उसका साहित्यिक महत्त्व बताइए।
(225 शब्द)

उत्तरः हिन्दी के कुछ साहित्येतिहासकारों ने भक्तिकालीन संतकवियों की प्रगतिशीलता को रेखांकित करते हुए उसका मूल उत्स नाथ-साहित्य में माना है। निश्चित रूप से इनकी दृष्टि में नाथ-साहित्य भी प्रगतिशील चेतना का काव्य है। यदि हम नाथ-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो प्रगतिशीलता के धरातल पर उसमें अनेक सीमाएँ दिखाई देती हैं। अतः यह एक विचारणीय बिन्दु है कि क्या नाथ-साहित्य को प्रगतिशील चेतना से युक्त काव्य मानना उचित है?

वस्तुतः किसी भी काव्य की प्रगतिशीलता का मूल्यांकन उसके युग-परिवेश और तात्कालीन अन्य काव्यधाराओं के परिप्रेक्ष्य में ही करना उचित है। इस दृष्टि से देखने पर तात्कालीन सामंतवादी परिदृश्य और अन्य काव्य धाराओं की तुलना में नाथ-साहित्य में प्रगतिशीलता के कुछ बिन्दु अवश्य दिखाई देते है।

नाथ साहित्य में कर्मकांड और बाह्मणवाद के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस बात का उल्लेख किया है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में कर्म अर्थशून्य विधि-विधान, तीर्थाटन, पर्वस्नान आदि के संकुचित घेरे में पहले से ही बहुत कुछ बद्ध चला आ रहा था, जिसकी निस्सारता नाथपंथी योगियों ने दिखाई।

तात्कालीन बाह्याडम्बर और दुराचरण के प्रति आक्रोश के रूप में भी नाथ साहित्य की प्रगतिशीलता दिखाई देती है। इसके अलावा, नाथ-साहित्य में कहीं-कहीं जातिभेद पर भी आघात दिखता है तथा नाथ-कवियों ने अनुभव और बुद्धिजन्य ज्ञान, दोनों में अनुभव को वरीयता दी है। ये भी नाथ-साहित्य में उपस्थित प्रगतिशीलता के लक्षण हैं।

नारी संबंधी दृष्टिकोण को लेकर नाथों की प्रगतिशीलता संदेह के घेरे में रहती है। इस साहित्य ने वज्रयानी साधना में उपस्थित नारी के प्रति भोगमूलक दृष्टि का तिरस्कार किया। नारी को लेकर यहाँ तक तो नाथ-साहित्य में प्रगतिशीलता दिखाई देती है, लेकिन उसकी एक बड़ी सीमा यह है कि उन्होंने नारी को अपनी साधना में बाधा मानते हुए तिरस्कृत किया।

कुल मिलाकर, सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण के साथ हिन्दी के भक्तिकाल की पृष्ठभूमि के रूप में नाथपथी योगियों के साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निर्गुण संत कवियों में जो रूढ़िविरोधिता, खण्डनात्मक वृत्ति और अक्खड़ता है, वह नाथपंथी साहित्य में निहित प्रगतिशील चेतना के ही प्रमाणस्वरूप है।

प्रश्नः हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल हेतु 'वीरगाथाकाल' नामकरण के औचित्य पर विचार कीजिए।
(300 शब्द)

उत्तरः हिन्दी साहित्येतिहास-लेखन परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पूर्व हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग हेतु चारणकाल, आंरभिक काल, बीजवपन काल आदि नाम दिए जा चुके थे। इस शृंखला में वैज्ञानिक दृष्टि से पहला महत्वपूर्ण प्रयास शुक्ल जी ने किया और अपनी विधेयवादी दृष्टि के आधार पर इसे 'वीरगाथा काल' कहा। उन्होंने स्पष्टतः कहा कि– "जिस काल विभाग के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है, वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के अनुसार किया गया है।" उन्होंने भाषा की दृष्टि से प्राकृतभास अपभ्रंश से ही हिन्दी को स्वीकारा किन्तु माना कि पहले तीन सौ वर्षों में सिद्धों-नाथों की साम्प्रदायिक रचनाएँ मिलती हैं जिन्हें साहित्य नहीं माना जा सकता। इसके बाद डेढ़ सौ वर्षों तक कोई निश्चित प्रवृत्ति नहीं मिलती। 1200 संवत् के उपरान्त एक निश्चित प्रवृत्ति दिखती है जिसमें चारण कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता की गाथाओं का वर्णन करते थे। उन्होंने इस काल विशेष की 12 रचनाओं को चुना जिन्हें वे प्रामाणिक मानते थे। उन्होंने अपभ्रंश की चार रचनाएँ लीं - विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपताका । देशभाषा से उन्होंने आठ रचनाएँ लीं- खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जयमयंक जसचन्द्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति की पदावली। वे लिखते हैं- "इनमें से अन्तिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सभी ग्रंथ वीरगाथात्मक हैं, अतः आदिकाल का नाम वीरगाथाकाल ही रखा जा सकता है।"

इन पदों को शृंगारिक मानने का मूल तर्क यह है कि यदि यह भक्ति की रचना होती तो इसमें सिर्फ संयोग वर्णन पर ही बल क्यों दिया जाता? पुनः ईश्वर का अश्लील वर्णन करना किस प्रकार की भक्ति है? दूसरा तर्क यह है कि विद्यापति मूलतः शैव थे, वैष्णव नहीं। इसलिए यदि उन्हें भक्ति ही करनी होती तो वे शिव पार्वती की करते, न कि कृष्ण राधा की। तीसरा तर्क यह है कि राधा-कृष्ण प्रेम के बहुत से पदों में अन्तिम वाक्य "राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमादेई पति भाने" आता है जिससे सिद्ध होता है कि रचना के केन्द्र में प्रतीकात्मक रूप से वस्तुतः शिवसिंह ही हैं, राधा व कृष्ण का तो बहाना मात्र है। ग्रियर्सन, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू ब्रजनन्दन सहाय इत्यादि ने विद्यापति को भक्त कवि माना है। इनका तर्क यह है कि यदि विद्यापति के गीत शृंगारिक या अश्लील होते तो इन्हें मन्दिरों में क्यों गाया जाता? दूसरा तर्क यह है कि बाद के बहुत से भक्तों ने, जैसे कृष्णदास और गोविंद दास ने विद्यापति को भक्त के रूप में ही स्मरण किया है। एक तर्क यह भी है कि राधा व कृष्ण के संयोग का महाकाव्यात्मक वर्णन करने के बावजूद यदि सूरदास को भक्त माना जाता है तो विद्यापति को क्यों नहीं माना जा सकता है?

वस्तुतः इस विवाद का कोई सर्वमान्य हल निकल सके-यह संभव नहीं। ये पद शृंगार व भक्ति के समन्वित रूप हैं और ऐसा होने का एक मूल कारण यह भी है कि शृंगार तथा भक्ति के स्थायी भाव 'रति' तथा 'ईश्वरविषयक रति' इतने निकट हैं कि इनके परस्पर मिश्रित होने की संभावना बनी ही रहती है। बेहतर यही होगा कि इन पदों को शृंगार समन्वित भक्ति के पद मान लिया जाए।

भक्तिकाल

प्रश्नः भक्ति-आन्दोलन के उद्भव के कारणों पर विचार कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः भक्ति आन्दोलन का उद्भव साहित्येतिहास के सर्वाधिक विवादास्पद प्रसंगों में से एक है। इस पर सहमति है कि भक्ति की मूलधारा दक्षिण भारत में 6वीं-7वीं शताब्दी में आरंभ हुई और 14वीं शताब्दी में इसने उत्तर भारत में अचानक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। किन्तु, यह क्यों हुआ, यह भारी विवाद का मुद्दा है। विभिन्न साहित्येतिहासकारों ने अपने-अपने इतिहासबोध के आधार पर इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयास किया है।

भक्ति आंदोलन के उद्भव की प्रथम व्याख्या विदेशी प्रभाव के रूप में की गई है। ग्रियर्सन का मत है कि भक्ति आंदोलन अचानक एक बिजली की कौंध की तरह फैला। उनके अनुसार दूसरी-तीसरी शताब्दी में मद्रास के निकट कुछ नेस्टोरियन ईसाई आकर बसे थे। इन्हीं की परम्परा से आगे चलकर रामानुज प्रभावित हुए और भक्ति आंदोलन अस्तित्व में आया। ताराचन्द और आबिद हुसैन भक्ति आन्दोलन को इस्लामी देन बताते हैं।

किन्तु उपर्युक्त मतों को स्वीकार करना कठिन है। ग्रियर्सन के मत का खण्डन करते हुए आचार्य द्विवेदी ने स्पष्ट कहा कि, ''जिस बात को ग्रियर्सन ने अचानक बिजली की चमक की तरह फैल जाना लिखा है, वह ऐसा नहीं है। उसके लिए सैकड़ों वर्षों से मेघखण्ड एकत्र हो रहे थे।'' ताराचन्द के मत का खण्डन दिनकर ने अपनी पुस्तक में यह कहकर किया कि पश्चिमी तट पर यह परम्परा विकसित होने से पहले ही भक्ति परम्परा दक्षिण में स्थापित हो चुकी थी।

भक्ति आंदोलन के उद्भव सम्बन्धी द्वितीय व्याख्या मार्क्सवादी व्याख्या है, जिसे मुख्यतः इरफान हबीब और के. दामोदरन और मुक्तिबोध ने प्रस्तावित किया है। इनके अनुसार दिल्ली सल्तनत की स्थापना के कारण जब बड़े पैमाने पर सड़क और भवन निर्माण आरंभ हुआ तो निम्न वर्णों की आर्थिक स्थिति में अचानक सुधार आया, जिससे उनके भीतर सामाजिक प्रतिष्ठा की भूख बढ़ी। इसी तनाव, बेचैनी और छटपटाहट ने निर्गुण संत काव्य को जन्म दिया, जो भक्ति आंदोलन का आरम्भिक बिन्दु है।

भक्ति आंदोलन के उद्भव की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रस्तुत की है। उनका मत है कि भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के उपरांत "अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने वल्लभाचार्य के संकेत 'देश म्लेच्छाक्रान्त है' के आधार पर इस व्याख्या का समर्थन किया है।

"संस्किरत है कूपजल, भाखा बहता नीर।"-कबीर
"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काज जु आवै कामरी, का लै करिअ कुमाच।।"- तुलसी

भक्तिकाव्य में भाषा के साथ-साथ कथानक भी लोक से ही लिया गया है। यहां तक कि मुस्लिम सूफी कवियों ने भी अपने काव्य के आधार के रूप में पद्मावती व हीरामन तोते जैसी लोक कथाएँ ही लीं ताकि उनका संदेश लोक तक सीधे पहुँच सके।

सामंती समाज में जहाँ नारी उपभोग की वस्तु मानी जाती है वहाँ नारियों को प्रेम की स्वतंत्रता देना अपने आप में एक लोकजागरण का कार्य है और सूर की गोपियों को यह स्वतंत्रता हासिल है। नारियों के विषय में प्रगतिशील न माने जाने वाले कवि तुलसी भी *"कत विधि सृजी नारि जग मांही, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"* कहते दिखाई देते हैं।

भक्ति काव्य ने जाति व्यवस्था के विरुद्ध सशक्त संघर्ष किया है। कबीर तो जाति व्यवस्था के विरुद्ध मोर्चा ही खोले हुए हैं। उन्होंने भक्ति के स्तर पर बेहद स्पष्ट कर दिया है कि 'हरि को भजे सो हरि का होई, जाति पांति पूछई नहिं कोई'। तुलसी कई जगह विप्र चरणों की वन्दना करने के बाद भी अंततः प्रभु के गोत्र को ही भक्त का गोत्र बताते हैं- 'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को'।

लोकजागरण में बाधक बनने वाले शास्त्रवाद के खिलाफ संत काव्यधारा विशेष रूप से मुखर है। संत कवियों को 'कागद लेखी' नहीं 'आंखन देखी' पर यकीन है। सूर के यहाँ भी अनपढ़ गोपियाँ शास्त्रज्ञ उद्धव को पराजित कर देती हैं जो शास्त्रवाद पर जाग्रत लोक की विजय को प्रदर्शित करता है।

भक्त कवि तात्कालीन राजनीतिक व्यवस्था से भी अनजान नहीं हैं और इस व्यवस्था के विरुद्ध लोक के साथ खड़े दिखाई देते हैं। तुलसी का कलियुग-वर्णन आर्थिक सामाजिक-राजनीतिक प्रत्येक स्तर पर अपने समय की विसंगतियों की पहचान करता है जो लोकजागरण का एक विशिष्ट पहलू है। वे न केवल इस लोक में शासकों के दुराचरण की आलोचना करते हैं बल्कि प्रजा को दुखी रखने वाले राजाओं के लिये परलोक में नर्क के रूप में दण्ड की व्यवस्था भी करते हैं और 'रामराज्य' के रूप में एक आदर्श भी स्थापित करते हैं। भक्तिकाव्य में भक्ति के साथ लोकजागरण की सरिता प्रवाहमान है इसमें कोई संदेह नहीं।

रीतिकाल

प्रश्नः केशवदास की मौलिकता पर प्रकाश डालिए। **(225 शब्द)**

उत्तरः सामान्यतः केशवदास परम्परावादी कवि के रूप में सामने आते हैं किन्तु उनकी कविता में मौलिकता के भी दर्शन होते हैं और कुछ आलोचकों ने इस ओर ध्यान भी दिलाया है। उदाहरण के तौर पर, अज्ञेय ने केशवदास को हिन्दी में काव्यशास्त्र के निर्माण का अग्रदूत मानते हुए छन्द निर्माण में उनकी प्रयोगशीलता की प्रशंसा की है। छन्द प्रयोग की दृष्टि से रामचन्द्रिका समस्त हिन्दी साहित्य में अप्रतिम है। असंभव नहीं कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी ऐसी बहु-विध छन्द योजना कहीं सुलभ न हो।

नवीन विषयवस्तु के समावेश तथा वर्णन वैचित्र्य की दृष्टि से केशवदास के अन्य ग्रंथों की तुलना में रामचन्द्रिका में मौलिकता अधिक दिखायी देती है। इस ग्रंथ में अलंकारपूर्ण राजसी वातावरण के चित्रण के साथ रामभक्ति का भी निर्वाह हुआ है। यह इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वाल्मीकि और तुलसी ने राम के राजसी रूप की अपेक्षा उनके वनवासी रूप को अधिक गौरवान्वित किया है किन्तु केशवदास ने राजाश्रय के निजी अनुभव के आधार पर राम के राजसी रूप की गरिमा अधिक बढ़ा दी है।

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में उन्होंने आधार-ग्रंथों के चयन में जितने वैविध्य का परिचय दिया है, वह उनकी मौलिक जिज्ञासा का ही परिचय देता है। कृष्ण भक्ति के संबंध में नवरसमयी कल्पना उनकी मौलिक उद्भावना मानी गई है। नायिका भेद एवं अलंकार निरूपण में भी उन्होंने मौलिक कल्पनाएँ की हैं। हिन्दी साहित्य में अन्योक्ति का स्वतंत्र रूप में सबसे प्रथम उल्लेख केशवदास ने ही किया है। यमक, उपमा आदि अलंकारों के भेदों में भी उनकी नवीनता दिखायी देती है।

इस प्रकार, केशवदास की मौलिकता काव्य के प्रायः सभी अंगों में देखी जा सकती है।

आधुनिक काल

प्रश्नः 'साकेत की उर्मिला' पर टिप्पणी लिखिए। **(150 शब्द)**

उत्तरः द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' की प्रमुख चरित्र 'उर्मिला' हिन्दी कविता की अविस्मरणीय चरित्र है।

मैथिलीशरण गुप्त को उर्मिला पर काव्य लिखने की प्रेरणा रवीन्द्र नाथ टैगोर के लेख 'काव्येर उपेक्षिता' से प्रेरित महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से मिली थी। गुप्त जी ने 'साकेत' के नवें एवं दसवें सर्ग में उर्मिला के विरह का विस्तार से वर्णन किया है।

रामकथा में उर्मिला का विरह सर्वाधिक मार्मिक है जिस ओर कवियों का ध्यान नहीं गया था। सीता तो राम के साथ चलने का तर्क दे पाती है लेकिन परिस्थितियोंवश उर्मिला साथ चलने के लिए तर्क नहीं दे सकती थी। वह मर्यादा, आदर्श, पारिवारिक बंधनों के कारण परवश हो जाती है। उर्मिला का विरह इसलिए भी मार्मिक हो जाता है क्योंकि उसकी अवधि चौदह वर्षों की लंबी अवधि है। इस ओर संकेत करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है-

'अवधिशिला का उर पर था गुरु भार।
तिल तिल काट रही थी दृग-जल-धार।।'

उर्मिला के विरह-वर्णन में गुप्तजी ने अतीत की स्मृतियों का भी सुन्दर उपयोग किया है।

हालाँकि अनेक मायनों में आधुनिक होते हुए भी उर्मिला का विरह-वर्णन काव्यशास्त्रीय एवं रीतिकालीन प्रभावों से अछूता दिखायी नहीं देता। इसके बावजूद भी यह निस्संदेह माना जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा साकेत में उर्मिला की चरित्र-सृष्टि हिन्दी कविता की एक विशिष्ट घटना है।

प्रश्नः 'प्रियप्रवास' पर टिप्पणी लिखिए। **(150 शब्द)**

उत्तरः 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है और यही ग्रंथ द्विवेदीयुगीन अनुशासन की धारा के प्रतिनिधि कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की प्रसिद्धि का आधार भी है। इसमें हरिऔध ने कृष्ण और राधा की पौराणिक कथा को अपनी मौलिक उद्भावनाओं से युक्त करते हुए आधुनिक जीवन दृष्टि की व्यंजना की है। प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण लोकसेविका एवं लोकसेवक के रूप में चित्रित हुए हैं। कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् राधा उनके विरह में दग्ध नहीं होतीं बल्कि स्वयं अपने को समाज सेवा से जोड़ लेती हैं। वे कहती हैं- "प्यारे जीवें, जगहित करें, गेह चाहे न आवें।" हरिऔध ने कृष्ण को भी ईश्वर रूप में न दिखा कर आदर्श मानव और जननायक के रूप में चित्रित किया है।

प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप चित्रित है। जन्मभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा, अन्याय का दमन, लोकोपकार का भाव आदि इसकी कथा में पिरोए गए हैं। इस रचना में कवि ने विश्व प्रेम को व्यक्तिगत प्रेम से अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। इसमें हरिऔध का प्रकृति चित्रण सजीव और परिस्थितियों के अनुकूल है।

प्रियप्रवास में हरिऔध एक कुशल शब्द-शिल्पी दिखाई देते हैं। आलंकारिकता से युक्त करते हुए हरिऔध ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली और संस्कृत के वर्णिक छंदों का उपयोग किया है। एक उदहारण दृष्टव्य है-

"दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु शिखा पर थी विराजती, कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।"

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण 'प्रियप्रवास' हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में समादृत है।

प्रश्नः छायावादी काव्य में निहित वैयक्तिकता की चेतना पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः छायावाद स्वतन्त्रता की चेतना को मूल्य के स्तर पर धारण करता है। इसलिए यह स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक पक्ष तक सीमित नहीं रहती, समाज के सबसे महीन स्तर 'व्यक्ति' तक पहुँचती है। छायावाद के कवि एक ऐसे समाज में रह रहे थे जहाँ सामन्तवादी रूढ़िवादी सामाजिक दबावों का क्षरण हो रहा था तथा व्यक्तिवाद का विकास दिखाई देने लगा

प्रश्नः हिन्दी के नवगीत आन्दोलन का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं का निरूपण कीजिये।

(225 शब्द)

उत्तरः नवगीत समकालीन हिन्दी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इसका आरंभ कब हुआ- इस प्रश्न पर विवाद है, किन्तु मोटे तौर पर इसे नवलेखन या नई कविता के दौर से संबंधित माना जाता है। वस्तुतः यह आंदोलन नई कविता के एक दावे के विरोध में उपजा है। नई कविता के समर्थक मानते थे कि आधुनिक भाव-बोध पर आधारित कविताओं की विषय-वस्तु इतनी जटिल व विश्लेषणात्मक है कि इसकी अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से नहीं हो सकती। गीत की रचना के लिये जो तीव्र भावुकता, रोमानियत और प्रवाह चाहिये, वह आधुनिक काव्यानुभव से सुसंगत नहीं है। इस दावे के विपरीत नवगीत के समर्थकों ने आधुनिक यथार्थ से सम्बद्ध गीत रचे और सिद्ध किया कि गीत अप्रासंगिक विधा नहीं है। उसमें इतनी लोचशीलता है कि वह समकालीन यथार्थ को भी धारण कर सके। यही आंदोलन नवगीत आंदोलन कहलाया।

इस आंदोलन के प्रमुख सिद्धांतकार हैं- रवीन्द्र भ्रमर तथा रमेश रंजक। रमेश रंजक इसके सबसे प्रसिद्ध गीतकार भी हैं। इनके अतिरिक्त कुमार शिव, वीरेन्द्र मिश्र, शंभूनाथ सिंह, ओम प्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह तथा उमाकांत मालवीय अन्य प्रसिद्ध नवगीतकार हैं।

आज़ादी तथा सभी विचारधाराओं के प्रति मोहभंग, वंचित वर्ग के प्रति करुणा का भाव, भीड़तंत्र में तब्दील हो चुकी लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति असंतोष का भाव, लोकगीत, लोकधुन व लोक जीवन के चित्रों का सुंदर प्रयोग आदि नवगीतों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मोहभंग को अभिव्यक्त करता नवगीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

जलती न कोई आग है, छिड़ता न कोई राग है,
केवल सुलगती है चिता, इस गीत के आकाश में।

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास

प्रश्नः प्रताप नारायण मिश्र के साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डालिए। **(225 शब्द)**

उत्तरः 'ब्राह्मण' नामक पत्र के संपादक प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु मण्डल के अत्यंत विनोदी तथा ज़िंदादिल कवि-लेखक थे। भारतेन्दु तथा बालकृष्ण भट्ट आदि की तरह पाण्डित्य की बजाय इनका झुकाव लोक जीवन की ओर अधिक था। इन्होंने भी भारतेन्दु मण्डल के अन्य सदस्यों की भाँति कविता के साथ ही निबंध तथा नाटक आदि गद्य विधाओं में भी रचनाएँ की हैं।

इन्होंने गद्य की तुलना में पद्य की रचना अधिक की। ये समस्यापूर्ति और पुराने ढंग की श्रृंगारी कविता करने में बहुत कुशल थे। इन्होंने देशदशा पर आँसू बहाने के अतिरिक्त 'बुढ़ापा', 'गोरक्षा' आदि विषय भी कविता के लिए चुने। ऐसी कविताओं में विचार, भाव एवं व्यंग्य तीनों सम्मिलित हैं। सामाजिक यथार्थ पर व्यंग्य करती हुई उनकी एक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे न देश कलेस,
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेस।"

हास्य व्यंग्य तथा अभिव्यंजना पक्ष पर बल मिश्र जी की कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रेमघन की भाँति इन्होंने भी लावनी-शैली में अनेक कविताएँ लिखी हैं। इनकी भी कविता की भाषा ब्रजभाषा ही है।

मिश्र जी ने कविता के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं में भी रचनाएँ की हैं। इनमें निबंध प्रमुख हैं। मिश्र जी की भावुकता तथा जिंदादिली मुख्य रूप से उनके भावपरक निबंधों में प्रकट होती है, इसीलिए इन्हें 17वीं शताब्दी के पश्चिमी निबंधकार रिचर्ड स्टील (जो भावप्रधान निबंध लिखने के लिए विख्यात था) के सादृश्य के आधार पर 'हिन्दी का स्टील' कहा जाता है। भावपरक व आत्मव्यंजक निबंधों के साथ-साथ इन्होंने सामाजिक जीवन से जुड़े विषयों पर भी गंभीर निबंध लिखे हैं। 'बेगार', 'रिश्वत', 'पंच परमेश्वर' आदि उनके गंभीर विषयों पर लिखे गए प्रमुख निबंध हैं।

भट्ट जी ने कविताओं के स्थान पर गद्यात्मक लेखन को प्रधानता दी है, किंतु कहीं-कहीं इनके गद्यों में भी पद्यात्मकता आ गई है, जैसे- ''आज हम इस जून एक ऊन दो के ऊपर सून वाली संख्या में प्रवेश कर रहे हैं।''

भट्ट जी का भाषा संबंधी दृष्टिकोण भी गौर करने के लायक है। वे भाषायी शुद्धता के समर्थक नहीं थे। उनका मानना था कि भाषा का विकास विभिन्न भाषाओं के शब्दों के आदान-प्रदान से ही होता है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि "बहुत से लोगों का मत है कि हम लिखने-पढ़ने की भाषा से यावनिक शब्दों को बीन-बीनकर अलग करते रहें। कलकत्ता और बंबई के कुछ पत्र ऐसा करने का कुछ यत्न भी कर रहे हैं, किंतु ऐसा करने से हमारी हिन्दी बढ़ेगी नहीं, वरन दिन-दिन संकुचित होती जाएगी। भाषा के विस्तार का सदा यह क्रम रहा है कि किसी भी देश के शब्दों को हम अपनी भाषा में मिलाते जाएँ और उसे अपना करते रहें।"

कुल मिलाकर, भट्ट जी ने आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का बहुविध संवर्द्धन किया है। उनके निबंधों की सीमा यह है कि उनमें वह सुघड़ता व वह वैचारिकता नहीं है जो आगे चलकर शुक्ल जी के निबंधों में मिलती है। इसी प्रकार आलोचना के क्षेत्र में भी उनका कार्य महज एक शुरुआती प्रयास ही माना जा सकता है। फिर भी, नवजागरणकालीन संक्रमण के दौर में हिन्दी साहित्य में गद्य की विविध विधाओं के प्रवर्तन तथा विकास में योगदान के लिए इनका प्रयास सराहनीय माना जाता है।

हिन्दी कहानी

प्रश्न: 'हिन्दी की पहली कहानी' के प्रश्न पर विचार कीजिए। **(225 शब्द)**

उत्तर: हिन्दी की पहली कहानी का प्रश्न विवादग्रस्त है। हिन्दी की आरंभिक कहानियों में इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' रैवरेण्ड जे. न्यूटन की 'एक ज़मींदार का दृष्टांत', किशोरीलाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी परिणय', राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज का सपना', भारतेन्दु हरिश्चंद्र की 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' आदि का उल्लेख किया जा सकता है, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में लिखी गई ये रचनाएँ अपने परंपरागत स्वरूप के कारण कहानी की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में सरस्वती तथा कुछ अन्य पत्रिकाओं में कुछ ऐसी रचनाओं का प्रकाशन हुआ जिन पर 'हिन्दी की पहली कहानी' के निर्णय हेतु विचार किया जा सकता है। ये कहानियाँ निम्नलिखित हैं-

इन्दुमती - किशोरीलाल गोस्वामी
गुलबहार - किशोरीलाल गोस्वामी
एक टोकरी भर मिट्टी - माधवराव सप्रे
प्लेग की चुड़ैल - मास्टर भगवान दास
ग्यारह वर्ष का समय - रामचंद्र शुक्ल
पंडित और पंडितानी - गिरिजा दत्त वाजपेयी
दुलाईवाली - बंगमहिला

उपर्युक्त रचनाओं में लक्ष्मीनारायण लाल आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई.) को हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'इन्दुमती' (1900 ई.) को पहली कहानी होने का गौरव प्रदान करते हैं बशर्ते कि वह किसी बंगला कहानी की छाया न हो। बाद के विद्वानों ने इन्दुमती पर शेक्सपीयर की रचना टेम्पेस्ट की छाया मानकर उसे पहली कहानी की दौड़ से बाहर कर दिया।

अब 1901 ई. में 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्रिका में प्रकाशित रचना 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिन्दी की पहली कहानी के रूप में स्वीकृत है। वस्तुत: कहानी के तत्त्वों की दृष्टि से यह पहली रचना है जिसे कहानी मानने में समस्या नहीं दिखती। अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं।

प्रश्न: हिन्दी कहानी के विकास में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' के योगदान पर प्रकाश डालिये। **(150 शब्द)**

उत्तर: प्रेमचंदपूर्व युग के विशिष्ट कहानीकार चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' का कहानी को साहित्य की एक सशक्त एवं सफल विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में आधारभूत योगदान है। गुलेरी जी ने कुछ ही कहानियाँ लिखीं, जिनमें प्रमुख हैं- 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' और 'उसने कहा था'। इनमें 'उसने कहा था' प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी की चरम उपलब्धि है।

प्रश्न: जयशंकर प्रसाद और अज्ञेय की कहानी-कला का उद्घाटन करते हुए उनके बीच की समानता और असमानता पर प्रकाश डालिये। (300 शब्द)

उत्तर: प्रसाद व अज्ञेय दोनों ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। दोनों ही कवि पहले हैं, कहानीकार बाद में। इसलिए इनकी कहानियों में बिम्ब, प्रतीक व लय जैसे मूलत: काव्यात्मक तत्त्वों की सघन उपस्थिति देखी जा सकती है। संवेदना के स्तर पर भी दोनों मन के भीतर जाकर मानसिक यथार्थ की तहों को खोलते हुए अंतर्मन का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

प्रसाद प्रेमचंद के समकालीन हैं किंतु कहानी कला की दृष्टि से उनसे पर्याप्त भिन्न हैं। प्रसाद की कहानियों में रोमांटिक (स्वच्छन्दतावादी) दृष्टिकोण दिखता है। वे अपनी कहानियों में (नाटकों की तरह) अतीत की पृष्ठभूमि लेते हैं। राष्ट्रवाद तथा सांस्कृतिक आदर्शवाद उनकी संवेदना का केंद्र बिंदु है इसलिए प्रसाद की अनेक कहानियाँ देशप्रेम जैसे विषयों पर लिखी गई हैं। ये सारी विशेषताएँ प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार' में देखी जा सकती हैं। जिसकी नायिका 'मधूलिका' प्रेम व देशप्रेम के गहरे अंतर्द्वन्द्व से गुजरकर अंतत: देशप्रेम के पक्ष में निर्णय लेती है, परंतु अपने लिए पुरस्कार के रूप में मृत्युदण्ड ही मांगती है।

अज्ञेय कई दृष्टियों से प्रसाद की परंपरा के ही रचनाकार हैं। इनकी कहानियों में सूक्ष्म विश्लेषणात्मक व वैचारिक परिपक्वता दिखती है। अज्ञेय की कहानियों पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद का प्रभाव भी है। अज्ञेय की कहानियों के पात्र प्राय: शहरीकरण के कारण अपनी जड़ों से कटे हुए मध्यमवर्गीय व्यक्ति हैं। शहरों का यंत्रीकरण इन पात्रों के भीतर एक ऊब व घुटन पैदा कर देता है। विडंबना यह है कि इस ऊब व घुटन का निवारण नहीं होता बल्कि यह जीवन का एक अंग बन जाती है। इसे अज्ञेय की कहानी रोज/गैंग्रीन में बेहद स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कहानी का केन्द्रीय वाक्य 'ऐसा तो रोज़ होता है' इसी ऊब व नएपन के अभाव को प्रदर्शित करता है।

प्रसाद की कहानी के पात्रों में यह ऊब नहीं है। वहाँ द्वन्द्व तो है पर एक उत्साह भी है। यह संभवत: प्रसाद के आदर्शवाद के कारण संभव हो पाया है। इसी आदर्शवाद के प्रभाव में प्रसाद की कहानियों के नारी चरित्र (मधूलिका, चम्पा) अत्यंत सशक्त बन कर उभरे हैं। अज्ञेय ने अपने आप को आदर्श के उस धरातल से मुक्त कर लिया है जिससे पात्र यथार्थ के और करीब आ गए हैं। इसी कारण दोनों के बीच शिल्पगत साम्य में भी संवेदना का पर्याप्त वैषम्य स्पष्ट दिखता है। अज्ञेय ने प्रसाद की परंपरा में कुछ जोड़ा भी है और कुछ छोड़ा भी है। कुल मिलाकर इससे परंपरा कुछ अधिक समृद्ध ही हुई है।

हिन्दी उपन्यास

प्रश्न: वर्तमान समय में 'तमस' उपन्यास की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए। (225 शब्द)

उत्तर: 'तमस' भीष्म साहनी के सबसे महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। वे सामाजिक यथार्थवाद से जुड़े हुए रचनाकार थे, अत: अपने अन्य उपन्यासों की तरह उन्होंने 'तमस' में भी समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं को कथावस्तु का आधार बनाया है।

'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिकता की समस्या से जुड़े हुए विभिन्न पहलुओं का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। चूँकि यह समस्या आज के भारत के समक्ष भी गंभीर चुनौती है; जो 1984 के सिक्ख दंगों, 2002 के गोधरा कांड और हाल ही में हुए मुजफ्फरनगर के दंगों के रूप में समय-समय पर अपनी मौजूदगी दर्ज कराता रहा है। अत: सांप्रदायिक तनाव की निरंतरता स्वत: 'तमस' को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक बनाती है।

'तमस' में सांप्रदायिक हिंसा का मूल कारण अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को माना गया है जो कि वर्तमान भारत की वोट बैंक पर आधारित राजनीति पर भी लागू होता है। राजनीतिक पार्टियाँ अपने चुनावी हितों को साधने के लिए आज भी सांप्रदायिक तनावों को बढ़ाने से परहेज नहीं रखती। आज भी प्रशासन का सामाजिक समस्याओं के प्रति व्यवहार 'तमस' के 'मिस्टर रिचर्ड' की तरह ही निष्क्रिय और संवेदनशील बना हुआ है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि 'तमस' देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

1950 ई. के बाद आंचलिक उपन्यासों का तेजी से प्रसार होने के पीछे कुछ निश्चित सामाजिक-आर्थिक कारण काम कर रहे थे। प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

- आज़ादी के तुरंत बाद लांकतांत्रिक प्रणाली की शुरुआत हुई। चूँकि भारत की अधिसंख्य जनसंख्या गाँवों में रहती थी, अत: स्वाभाविक था कि धीरे-धीरे राजनीति में गाँवों की भूमिका केन्द्रीय होती जाए। इस कारण ग्रामीण जीवन की ओर राजनेताओं और मीडिया के साथ-साथ बुद्धिजीवियों व साहित्यकारों का भी ध्यान गया।
- तीव्र शहरीकरण के कारण बहुत बड़े पैमाने पर ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन हुआ। ये लोग शहर के जटिल ढाँचे में रहते तो थे किन्तु इनके संस्कार इन्हें ग्रामीण जीवन की सरलता की ओर खींचते थे। ग्रामीण जीवन के प्रति 'नोस्टाल्जिक' होने के कारण ऐसे लोगों ने आंचलिक उपन्यासों की ओर रुझान प्रदर्शित किया।
- स्वाधीनता संग्राम के दौरान एक व्यापक लक्ष्य होने के कारण लोगों का ध्यान अपने अंचल पर कम, राष्ट्र पर ज्यादा था। स्वाधीनता प्राप्त होने पर, विशेषत: मोहभंग के बाद स्वाभाविक था कि लोगों का ध्यान अपनी स्थानीयता की ओर जाए।

हिन्दी के प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास इस प्रकार हैं–

फणीश्वरनाथ रेणु	–	मैला आँचल, परती परिकथा
नागार्जुन	–	बलचनमा
रांगेय राघव	–	कब तक पुकारूँ
राही मसूम रजा	–	आधा गाँव
उदयशंकर भट्ट	–	सागर, लहरें और मनुष्य
रामदरश मिश्र	–	जल टूटता हुआ
शानी	–	काला जल

हिन्दी नाटक

प्रश्न: हिन्दी की एब्सर्ड नाट्यधारा पर प्रकाश डालिये। **(225 शब्द)**

उत्तर: हिन्दी में एब्सर्ड (विसंगत) नाट्यधारा का प्रारंभ पश्चिमी प्रभाव से माना जाता है, लेकिन सच तो यह है कि पश्चिम में एब्सर्ड नाट्य धारा के आरंभ होने से भी पहले हिन्दी में भुवनेश्वर ने उससे मिलते-जुलते हुए से प्रयोग किए। उन्होंने विश्व मानव की पीड़ा, भय और निराशा, टूटते मानवीय रिश्तों के दर्द को अनुभव किया और अपने नाटक 'तांबे के कीड़े' में अभिव्यक्त किया। इस रचना में एब्सर्ड नाटक की तमाम विशेषताएँ मौजूद हैं। यह नायकविहीन नाटक है। मंच पर केवल एक ही पात्र है। शेष सभी पात्र नेपथ्य से ही अपने संवाद बोलते हैं। इस नाटक में कोई कथानक नहीं है, न घटनाएँ हैं, न ही इनका क्रमिक विकास। यह नाटक बहस नहीं करता बल्कि स्थितियों को प्रस्तुत करता है। किंतु, भुवनेश्वर के नाटक और पश्चिम के एब्सर्ड नाटकों में एक मूलभूत अंतर यह है कि भुवनेश्वर के नाटकों में मनुष्य के जीवन के प्रति एक गहरी करुणा और अंतर्व्यथा दिखाई देती है।

भुवनेश्वर के बाद हिन्दी में एब्सर्ड का सबसे सटीक प्रभाव विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में मिलता है। उनके 'तीन अपाहिज', 'लोटन', 'खोए हुए की तलाश' नाटकों से हिन्दी के विसंगत नाटकों की धारा पुष्ट होती है।

इसके पश्चात् लक्ष्मीकांत वर्मा का 'रोशनी एक नदी है' विसंगत नाट्यधारा को विकसित करता है। इसमें समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों को विषय के रूप में लिया गया है। उनके दूसरे नाटक 'अमृत पुत्र' में अवकाश प्राप्त तीन व्यक्तियों प्रोफेसर, जज और एकाउन्टेंट के माध्यम से भारतीय सुविधाभोगी, अवकाशभोगी प्रशासक वर्ग के जीवन की निरर्थकता को अभिव्यक्त किया गया है।

सातवें दशक के बाद हिन्दी नाटक और रंगकर्म में बुनियादी परिवर्तन शुरु हुए और क्रमश: नाटक बौद्धिकता, कोरी प्रयोगात्मकता और पाश्चात्य परिवेश और चिंतन से हटने लगा। अंतत: हिन्दी नाट्य परिदृश्य से एब्सर्ड नाटक पूरी तरह समाप्त हो गया।

'अंधायुग' के सभी पात्र अपने अंतर्मन में वेदना, यातना व द्वंद्व झेल रहे हैं। इन पात्रों में युयुत्सु की त्रासदी बहुत मार्मिक है। वह सत्य का पक्ष लेते हुए अपने ही परिवारजनों के विरूद्ध खड़ा होता है। अंततः युयुत्सु अनुभव करता है-

"अंतिम परिणति में दोनों जर्जर करते हैं।
पक्ष चाहे सत्य का हो या असत्य का।"

इसी प्रकार अश्वत्थामा 'अंधायुग' का विलक्षण चरित्र है। वह मनोग्रन्थि का सशक्त उदाहरण है।

'अंधायुग' को अपनी संप्रेषणीयता, संवेदनात्मक गहराई, महाकाव्यात्मक विशदता, चारित्रिक जटिलता और गत्यात्मक जीवन्त भाषा के कारण कई बार अनेक प्रयोगों के साथ सफलतापूर्वक मंचित किया जाता रहा है। कुल मिलाकर अपनी संवेदनात्मक गहराई एवं तीक्ष्णता तथा कुशल रंगमंचीयता के कारण यह नाटक अत्यधिक महत्त्व रखता है।

निबंध, आलोचना एवं अन्य गद्य विधाएँ

प्रश्नः हिन्दी निबंध परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अवदान बताइए। (225 शब्द)

उत्तरः आचार्य शुक्ल ने हिन्दी निबंध परम्परा को बहुत कम समय में परिपक्वता के उच्च स्तर तक पहुँचा दिया। उनके योगदान को निम्नलिखित बिन्दुओं में व्याख्यायित किया जा सकता है-

1. विषयों के स्तर पर उन्होंने मनोविकारपरक तथा काव्यशास्त्रीय क्षेत्रों को चुना। उनसे पूर्व, इन दोनों ही क्षेत्रों में निबंध लिखे जा रहे थे किन्तु दोनों को परिपक्वता आचार्य शुक्ल ने ही दी। उनके मनोविकारपरक निबंधों में मिलने वाली सूक्ष्मता तथा काव्यशास्त्रीय निबंधों में मिलने वाली मौलिकता उन्हें परम्परा में विशिष्ट स्थान दिलाती है।
2. निबंध परम्परा को शुक्ल जी ने शैली के स्तर पर भी महत्वपूर्ण योगदान दिया-
   (i) उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो उस युग की अमानकता जैसी समस्याओं से बची हुई थी। इस दृष्टि से जिस मानकीकरण हेतु आचार्य द्विवेदी सरस्वती पत्रिका के माध्यम से प्रयास कर रहे थे, वही कार्य उन्होंने निबंधों में किया।
   (ii) उन्होंने हिन्दी निबंधों को वैज्ञानिक शैली से जोड़ा। इसके पूर्व के निबंधों में वैज्ञानिक शैली की सभी विशेषताएँ एक साथ नहीं मिलती थीं।
   (iii) वस्तुनिष्ठ विश्लेषण की गंभीरता से विचलित हुए बिना उन्होंने वैयक्तिकता, सहृदयता, साहित्यिकता, आत्मनिष्ठता और मनोरंजन जैसे तत्वों का पर्याप्त ध्यान रखा जिससे उनके निबंध शुष्कता से बचे रहे।
   (iv) उन्होंने भाषा के स्तर पर कसाव का अनूठा प्रतिमान उपस्थित किया। उनकी भाषा इतनी कसी हुई है कि एक भी शब्द अनावश्यक नहीं मिलता। भाषिक मितव्ययता की यह शैली आगे के साहित्य में अत्यंत प्रचलित होतीगई।
   (v) उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति से बचते हुए हास्य विनोद, उदाहरण आदि की शैली से उन्होंने लोकमंगल के पक्ष को पुष्ट किया और सिद्ध किया कि जटिल से जटिल और सैद्धांतिक विषयों में भी लोकमंगल का भाव आरोपित किया जा सकता है।

प्रश्नः रसवादी आलोचक होते हुए भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक आलोचक हैं। कैसे? (225 शब्द)

उत्तरः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मूलतः रसवादी आलोचक हैं। अपनी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षाओं में रस को उन्होंने सर्वाधिक प्रामाणिक एवं सर्वोपरि प्रतिमान के रूप में प्रयुक्त किया है। किन्तु, उनकी रस-संबंधी अवधारणा परंपरागत रस-चिन्तन से भिन्न है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समक्ष आचार्य भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक रस-चिंतन की सुदीर्घ परंपरा उपस्थित थी। आरंभ में भरत ने रस को आध्यात्मिक अनुभूति घोषित नहीं किया था, किन्तु शनैः-शनैः रस पर धर्म तथा दर्शन का प्रभाव बढ़ता गया तथा वह 'ब्रह्मानन्द सहोदर' मान लिया गया। रस को जहाँ आध्यात्मिकता से हटाया भी गया, वहाँ भी लोकोत्तर अर्थात् लोक-भिन्नता का अर्थ दिया गया। किन्तु, शुक्ल जी का रस-चिंतन परंपरागत न होकर आधुनिक नवजागरणवादी चिन्तन के प्रभाव स्वरूप परिवर्तित होकर उपस्थित हुआ। वे रस के साथ युग के तमाम वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक विचार लाते हैं, जिससे उनके रस-चिंतन को नई धार मिलती है।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456